International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 09-06-2022, Accepted: 25-06-2022, Published: 12-07-2022
Volume 8, Issue 4, 2022, Page No. 24-25

अज्ञेय की काव्य–संवेदना

ज्योत्स्ना आनंद
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध–आलेख का ध्येय आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर अज्ञेय के काव्य के भाव एवं शिल्प पक्ष को प्रस्तुत एवं विवेचित करना है। यायावर अज्ञेय के काव्य का भावनात्मक पक्ष काव्य में चीनी और पानी के मेल के समान मानों घुल–सा गया है। भाव शिल्प के आभूषणों सहित प्रयोग की पटरी पर सरपट दौड़ लगाते प्रतीत होते हैं। शोध–आलेख का उद्देश्य भी अज्ञेय की काव्य–कला का निदर्शन ही है।

मूल शब्दः यायावर, प्रयोगवाद, कवि, छायावाद, नई कविता

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य जगत् में अज्ञेय का आगमन प्रयोगवादी कवि के रूप में हुआ। कुछ काल तक प्रयोगवादी कहलाते रहने के उपरांत उन्होंने नये कवि के रूप में अपना चोला बदल लिया और अब वे इसी रूप में प्रतिष्ठित हो गए हैं। वे नई कविता के अग्रणी, मसीहा, प्रवर्तक आदि भले ही न रहे हों किंतु प्रतीक पुरुष अवश्य माने जाते हैं। छायावाद व प्रगतिवाद के बाद काव्य के क्षेत्र में जिन प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ उनका एक विशाल भण्डार अज्ञेय के काव्य में मिलता है। अज्ञेय स्वयं 'प्रयोग और प्रेषणीयता' नामक लेख में लिखते हैं – "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। किंतु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उनसे आगे बढ़ कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया या जिनको अभेद मान लिया गया।" नई कविता के स्वरूप निर्धारण व विकास यात्रा में अज्ञेय की भूमिका न केवल महत्त्वपूर्ण है अतिपु उनकी भूमिका का ऐतिहासिक महत्त्व भी है।

अज्ञेय की काव्य–चेतना पर काव्य–रचना के आरंभिक दिनों में छायावादी संस्कारों का प्रभाव रहा है। इस दृष्टि से 'भग्नदूत' व 'चिंता' काव्य कृतियाँ दृष्टव्य हैं। आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति, अहं की स्वीकृति, नर–नारी के बीच गतिशील संबंध की कल्पना आदि नई प्रवृत्तियाँ भी अज्ञेय में आ गई हैं। 'तार सप्तक' की रचनाओं 'इत्यलम्' के अंतिम दो खण्डों व 'मिट्टी के ईहा' में अज्ञेय का स्वरूप छायावादी संस्कार से भिन्न हो गया है। इन्हीं रचनाओं से अज्ञेय का प्रयोगकाल निर्मित होता है।

'हरी घास पर क्षण भर' के प्रकाशन से अज्ञेय हिंदी संसार में नवीन काव्य चेतना के प्रमुख कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इस संकलन द्वारा नई भावभूमि की अनेक कविताएँ पाठकों के समक्ष आईं। 'हरी घास पर क्षण भर' से लेकर 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' तक की रचनाओं में अज्ञेय एक प्रौढ़ कवि के रूप में विद्यमान हैं। अज्ञेय की काव्य–चेतना के मुख्य विषय – नर–नारी प्रेम, प्रकृति, मानवता और समाज, अध्यात्म और रहस्यानुभव आदि हैं।

अज्ञेय की काव्य–चेतना में प्रेम का विशिष्ट महत्त्व है। काव्य यात्रा के प्रथम चरण में अज्ञेय का प्रमुख काव्य विषय प्रेम ही है। द्वितीय चरण मे प्रेम, प्रकृति और समाज को लगभग समान महत्त्व दिया गया है। तृतीय चरण में प्रकृति और रहस्यानुभव की प्रमुखता दृष्टिगत होती है। काव्य यात्रा के तीनों ही चरणों में अज्ञेय की प्रेम–भावना किसी न किसी रूप में विकसित होती रही है। इस विकास की दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभ में कवि की प्रेम–भावना आदर्श के ऊँचे पर्वत शिखर से अपना उत्स ढूंढ़ती हुई प्रवाहित होती है, मध्य में यौन चेतना से युक्त होकर व्यापक रूप धारण कर लेती है। अंत में गंभीर होकर अध्यात्म के समुद्र में प्रवेश पाने लगती है। अज्ञेय की प्रारंभिक प्रेम विषयक कविताओं पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। 'भग्नदूत' से 'इत्यलम्' तक की रचनाओं में कवि की प्रेम–भावना ने यत्र–तत्र भावुकता व आदर्श का दामन पकड़ रखा है। 'चिंता' में नर–नारी के प्रेम संबंध का मात्र आदर्श रूप ही नहीं आधुनिक रूप भी मिलता है। इस काव्य में अज्ञेय ने नर–नारी के संबंध को गतिशील संबंध मानते हुए सखी–सखा संबंध की बात उठाई है। "मैं तुम क्या? बस सखी–सखा" – मात्र एक कथन नहीं है अपितु यह अज्ञेय की प्रेम संबंधी उस मान्यता की ओर संकेत करता है जिसका स्पष्टीकरण उन्होंने 'चिंता' की भूमिका में दिया है।

अज्ञेय का प्रेम संबंधी दृष्टिकोण व्यक्ति–विशेष की दृष्टि से भले ही उपयुक्त प्रतीत हो, सामाजिक दृष्टि से अव्यावहारिक है। अज्ञेय की प्रेमानुभूति में यौन–चेतना का प्रवेश 'इत्यलम्' की रचनाओं से हो जाता है। अज्ञेय प्रेम को छिपाने की वस्तु नहीं मानते हैं और खग–युगल को मुक्त रूप से प्रणय संपन्न करते हुए मानव की स्थिति पर आक्षेप करते हैं। इस प्रकार आरंभिक रचनाओं में भी कवि की प्रेम–दृष्टि अपना विशिष्ट स्वरूप ग्रहण करने लगती है। आरंभिक प्रेम कविताओं की समग्रता देखने से पता चलता है कि प्रेम कवि की संवेदना से मूल रूप से जुड़ा हुआ है। इस काल में कवि की प्रेम चेतना भावुकता, कैशोर्य, कल्पना व परंपरा मुक्त प्रेम निरूपण से अलग होने की चेष्टा कर रही है। 'हरी घास पर क्षण भर' व इससे आगे की काव्य यात्रा प्रौढ़ कवि की काव्य–यात्रा है। अब उनकी प्रेमानुभूति आदर्शवादिता, भावुकता आदि का पूर्णतः परित्याग कर देती है और यथार्थ के धरातल पर अपने को प्रतिष्ठित कर लेती है। अज्ञेय के अनुसार – "मेरा कर्म

मेरा तभी हो सकता है जब मैंने स्वेच्छया उसका वरण किया होय वरण की स्वतंत्रता के बिना मैं कर्म का निमित्त हो सकता हूँ, कर्मी नहीं हूँ।"

अज्ञेय ने विरह का भी अंकन किया है। अनेक कविताओं में स्मृति के माध्यम से विरह जन्य अनुभूतियों का अंकन हुआ है। आकाश में नये बादलों को उमड़ता देखकर प्रेयसी की याद आ जाती है। सामान्य विरहानुभूतियों के चित्रों के अतिरिक्त अज्ञेय ने विरह के क्षेत्र में नई अनुभूतियों की भी अभिव्यक्ति की है। अज्ञेय प्रेम को न तो अतीत में देखते हैं और न भविष्य में। प्रेम तो सदैव वर्तमान रहता है।

अज्ञेय ने अनेक प्रकृति परक रचनाएँ भी लिखी हैं। उनकी चेतना में प्रकृति के अनेक बिंबों की छाप विद्यमान है जिन्होंने अज्ञेय की संवेदना को ही विकसित नहीं किया है अपितु उनकी काव्य–चेतना को भी विस्तार दिया है। अज्ञेय की सौंदर्य–चेतना व रहस्य–चेतना का आधार उनकी प्रकृति चेतना है। किंतु प्रकृति कवि का साध्य नहीं साधन है। प्रकृति के द्वारा कवि ने आत्मान्वेषण, रहस्य दर्शन आदि का गंभीर काम तो लिया ही है साथ ही इसके माध्यम से उन्होंने समाज पर व्यंग्य करने, परिवेश अंकित करने, उपदेश देने, किसी चित्र को अलंकृत करने आदि का भी काम लिया है। इसके अतिरिक्त अज्ञेय के काव्य में प्रकृति के विरोधी चित्र भी मिलते हैं। कहीं आह्लादमय, उल्लासमय रूप मिलता है तो कहीं कारुणिक व क्षोभपूर्ण।

अज्ञेय इस बात से सहमत नहीं है कि कोई भी सर्जक केवल 'स्वान्तः सुखाय' लिखता है या लिख सकता है। अज्ञेय की चेतना में व्यक्ति और समाज का समान महत्त्व है। यदि व्यक्ति के स्वाभाविक विकास को खण्डित करके समाज पनपता है तो यह उन्हें काम्य नहीं है। व्यक्ति चाहे लघुमानव ही क्यों न हो, व उसकी सुरक्षा तथा उसके स्वतंत्र विकास के पक्षधर हैं। आडंबरों से सुशोभित समाज में 'कुंठा रहित इकाई' या अकेले व्यक्ति को वे महत्त्व देना चाहते हैं। इसे वह आधुनिक समाज का महत्त्वपूर्ण लक्षण मान 'लिखि कागद कोरे' में लिखते हैं – "संस्कारवान होने की क्रिया को ही मैं आधुनिक मानता हूँ।"

कवि का लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना है जिसमें व्यक्ति का महत्त्व होगा, व्यक्ति अपने अस्तित्व व अपनी वैयक्तिक विशेषताओं पर गर्व कर सकेगा। साथ ही आवश्यकता पड़ने पर वह समाज के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देगा। समाज के निजी व्यक्तित्व व वैशिष्ट्य की रक्षा करने की आकांक्षा रखने वाले अज्ञेय मानववादी हैं। मानव व मानव के बीच की खाई को वे सेतु से पाट देना चाहते हैं। मानव के दुरूख–दर्द से अज्ञेय का कवि अपरिचित नहीं है। भारत के गरीबों, झोंपड़ी वासियों, किसानों मजदूरों आदि से उनकी पूरी सहानुभूति है।

अज्ञेय का ध्यान अनेक सामाजिक बुराइयों की ओर भी गया है किंतु इन सामाजिक समस्याओं को उन्होंने अपने काव्य का मुख्य विषय नहीं बनाया है। वस्तुतः अज्ञेय व्यष्टि चेतना और समाज–चेतना के समन्वय के कवि हैं। वे न तो ऐसे व्यक्तिवादी हैं जिनके समक्ष समाज उपेक्षणीय हो जाता है और न ही वे ऐसे समाजवादी हैं जिनके लिए व्यक्ति को सदैव बलि का बकरा बना दिया जाता है। जिस समाज में व्यक्ति का स्वतंत्र विकास संभव नहीं है, ऐसी सामाजिकता को अज्ञेय अच्छा नहीं मानते।

निष्कर्ष

विद्यानिवास मिश्र ने अज्ञेय की कविता में तीन चरणों का उल्लेख किया है। पहला चरण है – विद्रोह और हताशा का, दूसरा चरण है –भाव संचय का, तीसरा चरण है – बिना किसी आशा के आत्मदान में सार्थकता पाने का। मुझे अज्ञेय कृत "हिंदी साहित्यरू एक आधुनिक परिदृश्य" में उल्लिखित पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं –

"कल का सत्य, कल सब समझते थे, आज का सत्य,आज सब एक साथ नहीं समझते तो हम उसे छोड़ कर कल ही को सत्य कहें – बिना यह विचारे कि कल के उस सत्य की आज क्या प्रासंगिकता है, आज कौन उसके साथ तुष्टिकरण रागात्मक संबंध जोड़ सकता है।" अस्तुय इस विषय पर विचार–विमर्श आवश्यक है ।

संदर्भ

1. आत्मपरक, अज्ञेयः प्रयोग और प्रेषणीयता (लेख), प्रथम संस्करण 1983, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ–34
2. भवन्ती, अज्ञेय, द्वितीय संस्करण 1975, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ–141
3. लिखि कागद कोरे, अज्ञेय, द्वितीय संस्करण 1973, राजपाल एण्ड संस, पृष्ठ–67
4. हिंदी साहित्यः एक आधुनिक परिदृश्य, अज्ञेय, संस्करण 1967, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ–203